• वर्ष ६५ • अंक २० • मूल्य ₹२०

अक्टूबर (द्वितीय) २०२३

पाक्षिक

परोपकारी

महर्षि दयानन्द सरस्वती

साथ में ब्रह्मचारी रामानन्द

परोपकारिणी सभा के पूर्व प्रधान स्मृतिशेष आचार्य डॉ. धर्मवीर की पुण्यतिथि (६ अक्टूबर) पर यज्ञ एवं व्याख्यान

डॉ. वेद प्रकाश ''विद्यार्थी''
(सदस्य - परोपकारिणी सभा, अजमेर)

महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुखपत्र

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।।

वर्ष : ६५ अंक : २०

दयानन्दाब्दः १९९

विक्रम संवत् - आश्विन शुक्ल २०८०

कलि संवत् - ५१२४

सृष्टि संवत् - १,९६,०८,५३,१२४

▪

सम्पादक

डॉ. वेदपाल

▪

प्रकाशक- परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१

दूरभाषः ०१४५-२४६०१६४

०८८९०३१६९६१

▪

मुद्रक-देवमुनि-भूदेव उपाध्याय
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
७७४२२२९३२७

▪

परोपकारी का शुल्क

भारत में

एक वर्ष-४०० रु.

पाँच वर्ष-१५०० रु.

आजीवन (२० वर्ष) -६००० रु.

एक प्रति - २०/- रु.

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०

०७८७८३०३३८२

ऋषि उद्यान : ०१४५-२९४८६९८

RNI. No. ३९५९ / ५९

परोपकारी

अक्टूबर द्वितीय, २०२३

अनुक्रम

०१. विजयदशमी	सम्पादकीय	०४
* ऋषि मेला-२०२३ हेतु दुकान (स्टॉल) आवंटन		०५
०२. आर्यो! अपने सिद्धान्तों व इतिहास...	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	०६
०३. भारत के पितामह-महर्षि दयानन्द...	पं. नन्दलाल 'निर्भय'	०९
* परोपकारिणी सभा के आगामी शिविर व कार्यक्रम		११
०४. ज्ञान सूक्त-०३	डॉ. धर्मवीर	१२
०५. एक पुरानी उलझन	पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय	१५
०६. रश्मि सिद्धान्त सिद्धि-एक...	डॉ. मनु आर्या	२०
०७. संस्था समाचार	श्री ज्ञानचन्द	२६
* १४० वाँ ऋषि बलिदान समारोह		२९
* वेदगोष्ठी-२०२३		३१
* योग-साधना एवं स्वाध्याय शिविर		३३

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएं
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये।
किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

विजयदशमी

परोपकारी का यह अंक जब आपके सामने होगा, तब सारे देश में 'विजयदशमी' का पर्व बहुत ही हर्षोल्लास से मनाया जा रहा होगा। साथ ही यह चर्चा भी हो रही होगी कि विजय सदैव अच्छाई की होती है, बुराई हारती ही है। इस दिन मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने रावण पर विजय प्राप्त की थी। इस युद्ध में रावण की केवल हार ही नहीं हुई थी, अपितु राम के बाण से उसकी मृत्यु भी हुई थी। बुराई पर अच्छाई की जीत के प्रतीक स्वरूप इतने सुदीर्घ काल के बाद भी इसे उत्सव या पर्व के रूप में मनाया जाता है।

इस अवसर पर यही विचारणीय है कि क्या रावण का वध इसी दशमी-आश्विन मास शुक्ल पक्ष के दिन ही हुआ था? इस युद्ध के मूल कारण सीताहरण का काल कौन सा है? सीता रावण के यहाँ कितने समय तक रही? यह युद्ध कितने समय तक चला था?

राम-रावण युद्ध या विजयदशमी पर कोई भी विचार करते समय सदैव दो बिन्दु ध्यान में रखने चाहिएं-

१. राम का वनवास कब हुआ?

२. वनवास कितने दिन/वर्ष का था?

यह निर्विवाद है कि दशरथ ने जब राम के यौव-राज्याभिषेक के लिए कहा वह चैत्र मास था-

चैत्रः श्रीमानयं मासः पुण्यः पुष्पितकाननः।
यौवराज्याय रामस्य सर्वमेवोपकल्पताम्।।

अतः राम को वनवास का आदेश चैत्र मास में हुआ। वनवास की अवधि भी १४ वर्ष है। इसलिए राम का अयोध्या पुनरागमन भी चौदह वर्ष पूर्ण होने पर (न तो, उससे पूर्व और न ही उसके बहुत काल पश्चात्) होना चाहिए।

सीताहरण से पूर्व शूर्पणखा के राम के समीप आगमन की महत्त्वपूर्ण घटना के काल का निर्देश वाल्मीकीय रामायण में उपलब्ध है। तदनुसार वनवास के काल में राम गोदावरी के समीप पंचवटी नामक स्थान पर रह रहे थे। शरद् ऋतु के बीतने पर हेमन्त ऋतु में एक दिन शूर्पणखा आश्रम में आ गई-

शरद्व्यपाये हेमन्त ऋतुरिष्टः प्रवर्तते।।

अरण्य १६.१

तथाऽऽसीनस्य रामस्य कथा संसक्तचेतसः।
तं देशं राक्षसीकाचिदाजगाम यदृच्छया।।
सा तु शूर्पणखा नाम दशग्रीवस्य रक्षसः।
भगिनी राममासाद्य ददर्श त्रिदशोपमम्।।

अरण्य १७.५-६

अर्थात् मार्गशीर्ष-पौष मास के समय में शूर्पणखा का आगमन तथा भविष्य की घटना खर-दूषण आदि की मृत्यु के अनन्तर 'सीताहरण' का काल है।

पद्मपुराण पातालखण्ड तथा स्कन्द पुराण ब्रह्म खण्ड के अनुसार-

ततो माघासिताष्टम्यां मुहूर्त्ते वृन्दसंज्ञिते।
राघवाभ्यां बिना सीतां जहार दशकन्धरः।।

माघ कृष्ण अष्टमी को राम लक्ष्मण की अनुपस्थिति में दशकन्धर-रावण ने सीता का अपहरण किया।

सीता का अन्वेषण करने की अवधि में ही बाली वध तथा सुग्रीव का राज्याभिषेक एवं अंगद का यौवराज्याभिषेक हुआ।

इसके पश्चात् राम प्रस्रवण गिरि पर चले गए। वर्षा काल में सीतान्वेषण का कार्य अवरुद्ध रहा। शरद् ऋतु आने पर हनुमान् ने सुग्रीव को रामकार्य (सीतान्वेषण) हेतु प्रेरित किया। ...हनुमान् के अशोक वाटिका में सीता से मिलने पर सीता ने कहा कि-रावण ने एक वर्ष की सीमा निर्धारित की है और दसवाँ मास चल रहा है- (सुन्दरकाण्ड ३७.७८)।

पौष शुक्ल प्रतिपदा से तृतीया तक सैन्य उपस्थान तथा चतुर्थी को विभीषण से राम का मिलन हुआ। माघ शुक्ला द्वितीया से युद्ध प्रारम्भ होकर चैत्र कृष्ण चतुर्दशी तक सत्तासी दिन युद्धकाल रहा। इसमें पन्द्रह दिन युद्ध नहीं हुआ। इस प्रकार बहत्तर दिन युद्ध हुआ। पुराण के

अनुसार चैत्र शुक्ल द्वादशी से चैत्र कृष्ण चतुर्दशी तक अठारह दिन राम-रावण का तुमुल युद्ध हुआ, जिसमें रावण वध और राम को विजयश्री प्राप्त हुई।

चौदह वर्ष का वनवास पूर्ण कर चैत्र शुक्ला पञ्चमी को राम भारद्वाज आश्रम में पहुँच गए थे।

रामचरितमानस में भी वर्षा ऋतु के व्यतीत होकर शरद् ऋतु के आगमन तक भी सीतान्वेषण नहीं हुआ था। इस स्थिति में आश्विन शुक्ल दशमी को रावण वध मनाने पर-

१. सीता द्वारा रावण के यहाँ दसवाँ मास होना सम्भव नहीं

२. दीपावली-कार्तिक कृष्ण अमावस्या को राम के अयोध्या वापस आने पर वनवास के चौदह वर्ष पूर्ण नहीं होंगे। यह अवधि न्यूनाधिक होगी।

३. शूर्पणखा के पञ्चवटी आगमन के अनन्तर ही अपहरण, युद्ध आदि के प्रसंग उपस्थित होंगे। शूर्पणखा का आगमन वाल्मीकि के अनुसार हेमन्त (मार्गशीर्ष-पौष) ऋतु है।

अत: आश्विन शुक्ल दशमी को रावण वध मानना उचित नहीं है, क्योंकि इसे मानकर दीपावली के दिन राम के अयोध्या लौटकर आने की मान्यता के अनुसार तो राम के वनवास की अवधि (चौदह वर्ष) पूर्ण नहीं होती है।

विजयदशमी का यह पर्व क्षत्रिय वर्ग के विजयोल्लास का पर्व मनाना तो सम्भव है, क्योंकि प्राचीनकाल में वर्षा ऋतु में युद्ध तथा युद्ध के लिए परिस्थितियाँ प्रतिकूल रहती थीं इसलिए वर्षा ऋतु बीतने पर क्षत्रिय युद्ध की तैयारियाँ अथवा सैन्य साजो-सामान की प्रदर्शनियाँ करते रहे हों यह सम्भव है यद्यपि इसकी आध्यात्मिक व्याख्याएं भी प्रचलित हैं।

- डॉ. वेदपाल

ऋषि मेला-२०२३ हेतु दुकान (स्टॉल) आवंटन

प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष ऋषि मेला १७, १८ व १९ नवम्बर (शुक्रवार, शनिवार व रविवार) २०२३ को ऋषि उद्यान में आयोजित होगा। उसमें आर्यजगत् का साहित्य, हवन सामग्री, अन्यान्य सामग्री की दुकान लगती हैं। इस वर्ष से स्टॉल किराया २०००=००रूपये प्रति स्टॉल किया गया है। खुले में या अपनी इच्छानुसार स्टॉल लगाना निषिद्ध रहेगा। आप अपना पूर्ण सहयोग देकर इस कार्य में सहयोग करावें। जिन महानुभावों की पहले राशि जमा होगी उस क्रम से स्टॉल का निर्धारण होगा। ऋषि मेला-२०२३ हेतु दुकान (स्टॉल) आवंटन में तीन आधार रहेंगे- १- आर्य धार्मिक पुस्तक, २- हवन सामग्री, ओ३म् ध्वज आदि, ३- दवाईयाँ। आपको जितनी स्टॉल की आश्यकता है उसी अनुरूप राशि बैंक ड्रॉफ्ट या नगद या ऑनलाइन जमा करावें।

स्टॉल सुविधा:- कारपेट, दो टेबल, दो कुर्सी, २ ट्यूब लाइट प्रति स्टॉल। **स्टॉल साइज-** ७.५×१५ फीट।

ध्यातव्य- १. स्टॉल में रखी टेबल, कुर्सी आदि पूर्व निर्धारित सामग्री को इधर-उधर या अन्य स्टॉल में न बदलें। २. अतिरिक्त सामग्री की आवश्यकता हो तो टैन्ट हाउस के कर्मचारी से सम्पर्क कर प्राप्त करें तथा निर्धारित राशि तुरन्त भुगतान करें। ३. बिस्तर, रजाई, चादर, तकिया को टेन्ट हाउस कर्मचारी से प्राप्त कर निर्धारित राशि जमा करा दें। ४. स्टॉल व्यवस्थापक को राशि की रसीद दिखाकर स्टॉल संख्या प्राप्त करें। बिना पूर्व अनुमति के स्टॉल में सामान न रखें, न अधिकृत करें। ५. आपके सक्रिय सहयोग व अनुशासन की अपेक्षा है। अनियमितता को स्थान न देवें। ६. अपना मोबाइल (चलभाष) नम्बर देना अति आवश्यक है। ७. आप अपना स्थाई पता अवश्य देवें। ८. स्टॉल में आप पुस्तकें/दवाइयाँ/अन्य सामग्री का उल्लेख अवश्य करें। ९. स्टॉल आवंटन हेतु अग्रिम राशि जमा करावें, अन्यथा विचार सम्भव नहीं होगा। १०. एक पासपोर्ट फोटो भिजवावें, जो परिचय पत्र के साथ अंकित हो। उसमें स्टॉल आवंटन संख्या भी अंकित की जायेगी। ११. स्टॉल आवंटन की सूचना निर्धारित अवधि में दी जायेगी। **नोट:-** किसी प्रकार का अवैदिक साहित्य एवं सामग्री न हो अन्यथा उचित कार्यवाही सम्भव होगी।

सम्पर्क-देवमुनि- ७७४२२२९३२७

आर्यो! अपने सिद्धान्तों व इतिहास के रक्षक बनो

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

इस समय आर्यसमाज के सेवकों व प्रेमियों को अपने पवित्र सिद्धान्तों तथा गौरवपूर्ण इतिहास की सजग होकर रक्षा करने की आवश्यकता है। यह मत समझो कि सत्ताधारी लीडर जो उच्च पदों पर आसीन हैं, उनको अपने सम्मेलनों में बुलवाकर और ग्रुप फोटो खिंचवा कर आप अपने नित्य सत्य सिद्धान्तों तथा अनूठे इतिहास की रक्षा कर सकेंगे। इसके साथ – साथ आर्य मात्र को अपने सिद्धान्तों व इतिहास का प्रामाणिक ज्ञान होना भी अत्यावश्यक है।

जिसे सिद्धान्तों व इतिहास का ठोस तथा प्रामाणिक ज्ञान नहीं उसे इन विषयों पर कुछ लिखने का दुस्साहस नहीं करना चाहिये। इससे आर्यसमाज उपहास का विषय बनेगा। वर्तमान काल में अवैदिक मतों पर ऋषि दयानन्द जी के क्रान्तिकारी प्रभाव पर आर्यसमाज में क्या-क्या लिखा गया है? इस प्रकार के साहित्य के प्रसार की समाज के पास क्या योजना है? ऐसे नये-नये साहित्य (यथा राजवीर जी का नवप्रकाशित अंग्रेजी ग्रन्थ) की धूम मचानी चाहिये।

मैंने नई अंग्रेजी बाईबल पर कुछ लेख तो लिखे, परन्तु अपना ग्रन्थ न लिख सका। मैं कह नहीं सकता कि राजवीर जी के व मेरे अतिरिक्त किसी ने उस पर दृष्टि भी डाली है अथवा नहीं। पण्डित लेखराम के वंश का प्रमाद बहुत चुभने वाला है। आर्यो! अपनी एक वियज का डंका तो बजाओ। मैंने बाईबल का प्रमाण देकर लिखा कि पहले सृष्टि रचना के साथ ही मांसाहार का विचार भी परोसा जाता था भले ही सृष्टि उद्यान में, हरियाली में रची गई थी।

मैं मुनिवर गुरुदत्त के वंशजों को बाईबल के नये संस्करण के प्रमाण से यह बता चुका हूँ कि अब सृष्टि रचना के पहले दूसरे (उत्पत्ति) के पृष्ठों में से मांसाहार का विचार बहिष्कृत हो चुका है। आर्यो! मेरा उल्लेख करो चाहे न करो, परन्तु आप इस विषय को उठाकर पं. लेखराम से लेकर पं. रामचन्द्र देहलवी, पं. शान्तिप्रकाश और ठाकुर अमरसिंह के भारी उपकार पर कुछ लेख तो अवश्य देवें। मुझे कुछ बन्धु सहयोग करेंगे तो मैं कुछ काज पूरे करके बाईबल पर अपना मौलिक ग्रन्थ प्रकाशित करवाकर महर्षि दयानन्द का डंका बजाकर दिखा दूँगा।

आर्यो! आप स्वयं भ्रमित होने से तो बचिये : मैंने बहुत उत्सुकता से वेदप्रकाश मासिक के सितम्बर के अंक में डॉ. विवेक आर्य का लेख पढ़ा। किसी लेखक के एक लम्बे लेख को आपने बड़ा महत्त्व दिया, परन्तु जिस लेखक के विचारों को उस लेख में ऐसे मुखरित किया गया है मानो कि श्री सत्यानन्द स्टॉक्स पक्का सच्चा ऋषि भक्त, वैदिक सिद्धान्त प्रेमी तथा आर्यसमाज का बड़ा हितैषी व प्रशंसक था, परन्तु तथ्य तथा इतिहास इसे झुठलाते हैं। मैं बाल्यकाल में ही स्वाध्यायशी होने से स्टोक्स के हृदय परिवर्तन तथा पं. रुलियाराम की उस पर लगी छाप को जानता था।

पं. रुलियाराम बजवाड़ा में जन्मे ऋषि दर्शन करनेवाले एक परोपकारी ऋषि भक्त थे। मैंने पं. रुलियाराम जी के जीवन पर अपनी पुस्तक में सत्यानन्द जी स्टोक्स के हृदय परिवर्तन की घटना दी है। उनकी पर्वतीय दरिद्र वर्ग की सेवा को देखकर पादरी स्टोक्स ने यह कहा था कि इनके होते हमारी यहाँ क्या आवश्यकता है? उसने लोगों को ईसाई बनाना तो बन्द कर दिया, परन्तु न तो वैदिक धर्मी बना और न ही ऋषि दयानन्द की विचारधारा की पुष्टि में कोई विशेष लेख लिखा।

हमें भावुकतावश इससे अधिक कुछ नहीं लिखना चाहिये। इस समय मेरे सामने सत्यानन्द स्टोक्स के निधन के शीघ्र बाद छपनेवाले साप्ताहिक आर्य गज़ट का ऋषिबोध अंक है। मैंने पूरे अंक को ध्यान से फिर देखा है। स्टोक्स महोदय का नामोल्लेख इसमें नहीं मिला।

यदि वेदप्रकाश में छपा यह लम्बा लेख यथार्थ होता तो उस समय के आर्यगज़ट में भला उस विशेषांक में उस पर कैसे दो-तीन लेख न देते?

मेरे सामने आर्यसमाज के क्रान्तिकारी साप्ताहिक प्रकाश की एक फाईल है। सन् १९३१ की इस फाईल में आर्यसमाज के जाने-माने इतिहासकार तथा पंजाब के एक महान् धार्मिक व राजनेता पं. विष्णुदत्त की एक लम्बी लेखमाला के तीस लेख हैं। यह फाईल सन् १९३०-३१ की है। हिमाचल पर भी इसमें पर्याप्त सामग्री है। पं. विष्णुदत्त एडवोकेट (महाशय कृष्ण के सहपाठी) ने अपनी लेखमाल में श्रीमान् सत्यानन्द स्टोक्स का नाम तक नहीं दिया। आर्य प्रादेशिक सभा, आर्य प्रतिनिधि सभा की अर्धशताब्दियों के विशेषाङ्कों तथा पं. चमूपति लिखित इतिहास में उसका नाम तक नहीं।

मैं हिमाचल के साथ लगते जिला गुरदासपुर से समाज सेवा के क्षेत्र में उतरा। हिमाचल कई बार बड़े-बड़े सम्मेलनों में गया। उसकी पुत्री विद्या स्टोक्स को भी समाज के उत्सवों में कभी न देखी और न दीनानगर मठ में महाराज स्वतन्त्रानन्द जी का आशीर्वाद पाने, उनसे उपदेश लेने स्टोक्स के कभी आने की चर्चा किसी ने की और इस विषय में क्या लिखूँ? तत्कालीन किसी आर्यनेता के जीवन में उसकी चर्चा नहीं है। वह एक माननीय भला पुरुष है यह तो आर्यलोग मानते थे और मानते हैं।

एक ठोस देन : श्री अजय आर्य ने आर्यजगत् के सबसे पुराने प्रकाश संस्थान द्वारा आर्यसमाज के इतिहास पर तीन पठनीय मौलिक और प्रेरक खण्ड प्रकाशित करके आर्यसमाज के इतिहास में एक करणीय कार्य करके एक नया अध्याय जोड़ा है। आर्यजगत् में न जाने आपको यह कैसे सूझा कि पं. इन्द्र जी को आर्यसमाज के इतिहास के दोनों भागों में जो प्रामाणिक, प्रेरक घटनायें छोड़ देने का भारी खेद है। उन छूटी घटनाओं का पता लगाकर इन दोनों भागों को नये सिरे से प्रकाशित करना चाहिये और आधुनिक काल का इतिहास नये सिरे से लिखवा कर भी प्रकाशित करना चाहिये।

आपकी यह सोच अत्युत्तम तथा समाज हित में थी। आपने यह कार्य मुझे सौंपा। पहले दो भागों में पादटिप्पणियों के अतिरिक्त मुझे लगभग एक-एक सौ पृष्ठ की छूटी सामग्री देने को कहा गया। मैंने एक-एक घटना सप्रमाण देकर आर्यसामाजिक इतिहास की गरिमा बढ़ा दी है। इतिहास में जिन विषयों को छुआ तक न गया वे भी खोजकर दिये गये हैं यथा आर्यप्रकाशक, पुस्तक विक्रेता, आर्यों पर चलाये गये अभियोग आर्यों के यत्र-तत्र बहिष्कार, आर्यधर्म दर्शन की मौलिकता, विशेषतायें और शास्त्रार्थ, आर्यसमाज के इतिहास की घटनाओं का इतिहास में स्थान और मूल्याङ्कन। भारत के सार्वजनिक जीवन की प्रथम महिला, विदेशों में बहिष्कृत प्रथम देशभक्त तथा स्वराज्य संग्राम की पहली घटना ऋषि जी पर चलाया गया अभियोग। पाठक ऐसी पर्याप्त नई सामग्री इसमें पायेंगे।

तीसरे भाग के कितने पृष्ठ होंगे? यह बात दिया जाता तो मैं और सामग्री दे देता। इसमें इतिहास, धर्म, दर्शन, सुधार, उपकार विषयक ऐसी सप्रमाण सामग्री दी गई है जो इससे पहले किसी ग्रन्थ में नहीं मिलेगी। ब्यावर समाज में सेवा यज्ञ का अनुपम इतिहास, स्वराज्य संग्राम में जीवित जलाई गई पहली महिला। आर्यों के बहिष्कार में कूदने वाली प्रथम निर्भीक आर्य महिला। सहस्त्रों वर्षों के पश्चात् दीनदरिद्र दलितों की पाठशाला वे वेद प्रवचन की प्रथम घटना और शुद्धि आन्दोलन का गौरवपूर्ण इतिहास आदि।

अभी हम आर्यों के सामने आर्यों का और नया इतिहास लायेंगे। भारत के सार्वजनिक जीवन की प्रथम परोपकारी महिला के निधन पर एक ही लेख छपा था। जानते हो वह कहाँ छपा? किसने लिखा था? हमारा इतिहास ऐसा अनूठा है। कुछ प्रतीक्षा कीजिये।

इस्लाम में वैदिक धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों की धूम मचाने वाली पहली पुस्तक और आर्यसमाज की ओर से इस्लाम पर एतद्विषयक पुस्तक भी लिख दी गई है। आर्यसमाज की ऐसी पहली पुस्तक इस समय प्रकाशन

अधीन है। पाठक इसे एक नवक्रान्ति मानकर इसका गर्मजोशी से स्वागत करेंगे। देखेंगे इसके प्रसार के लिये कौन-कौन आगे आता है। पं. लेखराम जी की परम्परा अखण्ड है, प्रचण्ड है। यह परम्परा बन्द नहीं हुई।

राजस्थान में श्री ओम्मुनि जी के पुरुषार्थ तथा उनके हृदय में ऋषि मिशन की आग के कारण एक ज्ञानी, बलिदानी, पुरुषार्थी, परमार्थी आर्य महापुरुष का खोजपूर्ण जीवन चरित्र प्रकाशित होने वाला है। नये वर्ष तक प्राप्य होगा। पूजनीय लौहपुरुष स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज के उस शिष्य ने आर्यसमाज और राजस्थान के इतिहास में नये-नये कीर्तिमान बनाये, परन्तु राजस्थान में ही कुछ सज्जनों ने योजनाबद्ध ढंग से कभी भी, किसी पत्रिका में, किसी लेख में और किसी पुस्तक में उसका नाम तक न आने दिया।

१. क्या कोई यह जानता है कि राजस्थान में शुद्ध होकर आर्यसमाज में सम्मिलित होने वाले एक सुशिक्षित आर्यपुरुष को अपने विवाह में सम्मिलित होने का पहला निमन्त्रण किसने दिया था?

२. क्या कोई जानता है वह शुद्ध होकर आर्य बनने वाला ऋषि भक्त कौन था?

३. क्या कोई जानता है कि निमन्त्रण पाने वाले उस भाई ने जब वह पत्र पढ़ा तो पत्र पढ़ते ही उसके नयनों से अश्रुधारा बहने लगी। क्यों?

४. उसने क्यों क़ा उत्तर देते हुए कहा इस पहले विवाह में सम्मिलित होने का निमन्त्रण तो मुझे मिल गया, परन्तु मैं इसमें सम्मिलित न हो सकूँगा। कारण मुझे तब छुट्टी न मिल सकेगी।

इसपर स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज के उस शिष्य ने कहा, "लो मैं उस दिन विवाह नहीं करूँगा। जिस दिन आपको छुट्टी मिल सकेगी उसी दिन मेरी बरात जावेगी। आपके बिना यह विवाह नहीं होगा।"

और ऐसा ही हुआ। उस आर्यवीर ने जो कहा वह उसके गुरुदेव सदृश पत्थर पर खिंच जाने वाली एक रेखा थी।

५. आर्यपुरुषों! नोट कर लो, यह देश के और राजस्थान के इतिहास में ऐसी पहली और इकलौती घटना है। आज तक किसी वक्ता, विद्वान् व नेता ने लेखनी व वाणी से आर्यसमाज के इतिहास की घटना पर कभी दो शब्द न लिखे और न कहे। यह मेरा सौभाग्य कि इस इतिहास का अनावरण मेरे द्वारा हो रहा है। स्मरण रखिये कि यह विवाह वैसे भी जाति बन्धन तोड़कर हुआ। पण्डित लेखराम के उस योद्धा का जय-जयकार करने के लिये कोई यही एक घटना तो नहीं है।

सात खण्डों के मोटे-मोटे पोथों में राजस्थान के आर्यसमाज के इतिहास में उसका नाम तक नहीं मिलेगा। उसका जब उसमें नाम ही नहीं तो उसके काम की चर्चा क्या होनी थी? आर्यसमाज अस्पृश्यता के उन्मूलन के लिये लड़ता रहा और मरता रहा। यह नई प्रकार की अस्पृश्यता आर्यसमाज में किसने पैदा की? यह पोल भी कभी खुल जायेगी।

मैं अपने गुरुभाई के प्रति अपने उद्‌गार कैसे प्रकट करूँ? हाँ यदि आज सत्गुरु स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज और स्वामी सर्वानन्द जी होते तो उन्हें इस स्वर्णिम इतिहास का कारण मानकर उनकी चरणधूलि को माथे पर लगा लेता। उस संन्यासी ने कैसे-कैसे नररत्न समाज का दिये। परोपकारी में इस सत्पुरुष पर अभी और लिखूँगा।

कौन जानता है? किसने लिखा है? : देश में सन् १९४७ से पहले कई सत्याग्रह किये गये। क्या किसी सत्याग्रह में किसी जत्थे में आधे सत्याग्रही अनाथ थे? मुझे तो किसी ग्रन्थ में ऐसी कोई घटना नहीं मिली, परन्तु खोज करने पर हैदराबाद आर्य सत्याग्रह में एक जत्थे में छह में से चार (२/३) अनाथालय में पले युवक थे। राजस्था में किसी ने कभी इस पर दो शब्द नहीं कहे। इसका श्रेय लौहपुरुष को तो जाता ही है, इसके लिये उनके नामी शिष्य को भी हम नमन करते हैं। उसकी प्रेरणा भी काम कर गई। आर्यसमाज इस इतिहास पर क्यों न इतराय? **(क्रमशः)**

वेदसदन, नई सूरजनगरी, अबोहर, पंजाब।

भारत के पितामह - महर्षि दयानन्द सरस्वती

पं. नन्दलाल 'निर्भय'

नदियाँ-नाले, बहुत जगत् में, गंगा जैसा पानी ना।
दानी जग में बहुत हुए हैं, भामाशाह सा दानी ना।।
मत-मतान्तर बहुत जगत् में, वेदों जैसी वाणी ना।
ज्ञानी-ध्यानी बहुत हुए हैं, दयानन्द सा ज्ञानी ना।।

प्यारे सज्जनो! पौराणिक लोग शंकर (शिवजी) की कलाकृति बनाकर उसकी पूजा का ढोंग करते हैं। उस कलाकृति की जो एक मनुष्य की शक्ल की होती है। उसके सिर से गंगा बहती हुई दिखाते हैं, माथे पर चन्द्रमा बना हुआ दर्शाते हैं, उस कलाकृति के गले में साँपों की माला लिपटी हुई दिखाते हैं तथा उसके पूरे शरीर पर भस्म (मिट्टी) लगी हुई दर्शाते हैं। मैंने एक पौराणिक विद्वान् से पूछा कि यह किस व्यक्ति की कलाकृति है तो वह तपाक से बोला- श्रीमान् जी यह संसार का संहार करने वाले परमात्मा शिव की मूर्ति है। मैंने उसे दोबारा पूछा कि इसके सिर से गंगा बहती हुई क्यों दिखाई गई है? माथे पर चन्द्रमा क्यों बनाया गया है तथा इसके शरीर पर मिट्टी क्यों लगाई गई है? और गले में साँप क्यों लिपटे हुए हैं? वह व्यक्ति बोला - श्रीमान् जी, मुझे इसका ज्ञान नहीं है।

उसकी बात सुनकर मैंने उसे समझाया कि यह एक सच्चे साधु का चित्र है। इसे ठीक तरह समझने का यत्न करो। एक साधु के मस्तिष्क से वेद (ज्ञान) की गंगा बहनी चाहिए, उसके हृदय में दयाभाव होना चाहिए अर्थात् वह शीलवन्त होना चाहिए। साधु विश्व का कल्याण अर्थात् अपने विरोधियों की भी भलाई करने वाला होना चाहिए तथा वह आरामतलबी अर्थात् प्रमादी नहीं होना चाहिए। जो घूम-घूमकर संसार को वेद ज्ञान कराए वही सच्चा साधु है। इस युग में महर्षि दयानन्द सरस्वती वास्तव में ऐसे ही त्यागी-तपस्वी वैदिक विद्वान्, परोपकारी ईश्वर भक्त थे। भारतवर्ष में १९वीं शताब्दी नवजागरण का काल है। नवजागरण के आदिपुरुष राजाराम मोहनराय थे। उन्होंने अपने मिशन की पूर्ति के लिए ब्रह्मसमाज की स्थापना की थी। राजाराम मोहनराय अंग्रेजों के राज्य और अंग्रेजी भाषा को भारतवर्ष के लिए ईश्वर का वरदान मानते थे। वे वास्तव में अंग्रेजों के पक्के भक्त थे। अत: राजाराम मोहनराय समाज सुधार के कार्य में तो लगे किन्तु स्वराज का चिन्तन उनके लिए कुछ विशेष महत्त्व न रखता था।

स्वामी दयानन्द का कार्यकाल राजाराम मोहनराय से लगभग ५० वर्ष पीछे है। स्वामी दयानन्द का जन्म १२ फरवरी १८२५ में हुआ था और १८५७ के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के वे प्रत्यक्षदर्शी थे। बहुत सारे इतिहासकारों का मत है कि स्वामी दयानन्द ने संन्यासी के रूप में उस समय प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में सक्रिय भाग लिया था। उनके ग्रन्थों में भी ऐसे अन्त: प्रमाण उपस्थित है जो उनके सक्रिय भाग लेने का समर्थन करते हैं।

१८५७ का स्वतन्त्रता संग्राम असफल हो चुका था और अंग्रेजों का प्रभुत्व सारे भारत देश पर स्थापित हो चुका था। महारानी विक्टोरिया ने ईस्ट-इण्डिया कम्पनी से शासन ले लिया था और भारतवर्ष का शासन सीधे तौर पर बरतानियाँ सरकार के हाथों में चला गया था। महारानी विक्टोरिया ने भारत के लिए प्रसिद्ध घोषणा-पत्र प्रसारित कर दिया था। जिसके अनुसार अंग्रेज सरकार भारतवर्ष की प्रजा के साथ पूर्ण न्याय करेगी। किसी के साथ धार्मिक दृष्टि से कोई पक्षपात नहीं होगा और अंग्रेज सरकार भारतवर्ष की सुखसुविधा का ध्यान रखेगी। स्वामी दयानन्द ने अपने युग निर्माता क्रान्तिकारी ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' में महारानी विक्टोरिया की इस घोषणा का साफ उत्तर दिया है-

"अब अभाग्योदय से आर्यवर्त में भी आर्यों का

अखण्ड-स्वतन्त्र स्वाधीन निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है सो भी विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहा है। कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मत-मतान्तर के आग्रहरहित अपने और पराए का पक्षपात शून्य प्रजा, पर माता-पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है, परन्तु भिन्न-भिन्न भाषा, पृथक्-पृथक् शिक्षा अलग-अलग व्यवहार का विरोध छूटना अति दुष्कर है।''

जहाँ स्वामी दयानन्द ने अपने लेखों-व्याख्यानों, पुस्तकों में प्रार्थना की, सर्वत्र-स्वतन्त्र-स्वराज्य के लिए प्रार्थना की है, वहीं ब्रह्मसमाज के नेताओं की अंग्रेजी राज्य के प्रति भक्ति, प्रशंसा स्वामी दयानन्द के विचारों के अनुकूल नहीं थी और वे खुलकर इस सम्बन्ध में उनकी आलोचना करते थे। केशवचन्द्र सेन ब्रह्मसमाज के प्रसिद्ध नेता थे और वे ईसाईयों से और ईसाई सम्प्रदाय से इतने प्रभावित थे कि उन्होंने अपना पूजा स्थान मन्दिर न बनवाकर गिरिजाघर बनवाया था। स्वामी दयानन्द यह सबकुद विदेशी राज्य और उसकी भक्ति का फल मानते थे। उन्होंने ब्रह्मसमाज की आलोचना में लिखा है- ''इन लोगों में स्वदेश भक्ति बहुत न्यून है। ईसाईयों के बहुत से आचरण ले लिए हैं। खानपान विवाह आदि के नियम भी बदल दिए हैं। अपने देश की प्रशंसा और पूर्वजों की बड़ाई करनी तो दूर रही, उसके स्थान पर भरपेट निन्दा करते हैं।'' स्वामी दयानन्द भारतवर्ष के लिए देशभक्ति और अपने इतिहास तथा महापुरुषों की प्रतिष्ठा को बहुत महत्त्व देते थे। स्वदेश भक्ति का एक प्रखर-प्रमाण 'सत्यार्थप्रकाश' के निम्न उद्धरण में मिलता है- ''भला जब आर्यवर्त में उत्पन्न हुए हैं, इसी देश का अन्न-जल, खाया-पिया अब भी खाते-पीते हैं, तब अपने माता-पिता, पितामहादि के मार्ग को छोड़कर दूसरे विदेशी मतों पर अधिक झुक जाना ब्रह्मसमाजी और प्रार्थना समाजियों का एतद्देशस्थ की संस्कृत-विद्या से रहित अपने को विद्वान् प्रकाशित करना इंग्लिश भाषा पढ़ के पण्डिताभिमानी होकर एक मत चलाने में प्रवृत होना मनुष्यों का काम क्यों कर हो सकता है?''

स्वामी दयानन्द ने अंग्रेजों की उपनिवेशवादी नीतियों का भी खुलकर विरोध किया है। यहाँ तक कि अंग्रेज लेखकों ने उन्हें बागी-फकीर और विद्रोही संन्यासी की उपाधि दे डाली थी। पीछे उनकी पुस्तकों पर इलाहाबाद में जस्टिस हैरिंगटन की अदालत में अभियोग भी चला था। उन्होंने अंग्रेजों द्वारा भारतीय जनता पर लगाए गए नमक कर, जंगली उत्पाद पर चुंगी और सरकारी कागजों के मूल्य स्टॉम्प-ड्यूटी का जम कर विरोध किया है और यह सब सन् १८७५ ई. का काम है। महात्मा गांधी ने नमक कर का विरोध १९३० ई. में किया था और स्वामी दयानन्द ने मोहनदास गांधी से ५५ वर्ष पूर्व नमक कर के विरुद्ध आवाज उठाई थी। वे लिखते हैं- ''एक तो यह बात है कि जो नोन (नमक) और पौनरोटी (चुंगी) में जो कर लिया जाता है वह मुझको अच्छा नहीं मालूम देता, क्योंकि नोन के बिना दरिद्र का भी निर्वाह नहीं होता। किन्तु सबको नोन की आवश्यकता होती है। वे मजूरी-मेहनत से जैसे-तैसे निर्वाह करते हैं। उनके ऊपर भी यह नोन कर दण्ड तुल्य है। पौनरोटी (चुंगी) से भी गरीब लोगों को बहुत क्लेश होता है, क्योंकि गरीब लोग कहीं से घास छेदन करके ले जाए व लकड़ी का भार ले आए उनके ऊपर कौढ़ियों के कर लगाने से उनको अवश्य क्लेश होगा। इससे पौनरोटी (चुंगी) का जो कर स्थापना करना, वो भी हमारी समझ से अच्छा नहीं।'' वे आगे स्टॉम्प ड्यूटी का विरोध करते हुए लिखते हैं- ''सरकार कागद (स्टॉम्प) को बेचती है और बहुत सा कागजों पर धन बढ़ा दिया है। इससे गरीब लोगों को बहुत क्लेश पहुँचता है, सो यह बात राजा को करनी उचित नहीं है। कचहरी में बिना धन के कुछ बात होती नहीं। इससे जो कागजों के ऊपर धन लगाना है सो भी मुझको अच्छा मालूम नहीं देता।'' इन्हीं सब बातों को देखकर भारतीय

संसद के प्रथम अध्यक्ष श्री अनन्त शयन्य आयंगर ने स्वामी दयानन्द को राष्ट्रपितामह की उपाधि दी थी। श्री आयंगर जी कहते हैं- ''गांधी जी अगर राष्ट्र के पिता थे तो महर्षि दयानन्द 'सरस्वती' राष्ट्र के पितामह थे। महर्षि जी हमारी राष्ट्रीय प्रवृत्ति और स्वाधीनता आन्दोलन के आद्य प्रवर्तक थे। गांधी जी कुछ बातों में उन्हीं के पदचिह्नों पर चले। यदि महर्षि दयानन्द हमें मार्ग न दिखाते तो अंग्रेजी शासन में उस समय सारा पंजाब मुसलमान हो जाता और सारा बंगाल ईसाई हो जाता।''

सरदार वल्लभभाई पटेल की दृष्टि में स्वामी दयानन्द स्वराज्य के प्रथम उद्गाता थे। वे कहते हैं- ''बहुत से लोग महर्षि दयानन्द को सामाजिक और धार्मिक सुधारक कहते हैं, परन्तु मेरी दृष्टि में वे सच्चे राजनेता थे जिन्होंने सारे दश में एक भाषा, खादी, स्वदेश प्रचार, पंचायतों की स्थापना, दलितोद्धार, राष्ट्रीय और सामाजिक एकता, प्रचण्ड देशाभिमान और स्वराज की घोषणा यह सब बहुत पहले सर्वप्रथम देश को दिया था।'' स्वामी दयानन्द यह समझते थे कि देश का उद्धार स्वराज से ही होगा और साथ ही कृषि और उद्योग की उन्नति के लिए वे बहुत प्रयत्नशील थे। उनका मानना था कि कृषि की उन्नति और पशुओं की रक्षा किए बिना यह सम्भव नहीं है। इसीलिए उन्होंने ''गोकृष्यादि रक्षिणी'' सभा का प्रस्ताव ही नहीं किया अपितु उसके लिए प्रयत्नशील भी रहे। अंग्रेजों की नीति भारत के परम्परागत उसके लिए प्रयत्नशील भी रहे। अंग्रेजों की नीति भारत के परम्परागत उद्योगों को मिटाने की थी। अंग्रेजी उत्पाद को बढ़ाने के लिए वे भारत के कारीगरों बुनकरों आदि को बहुत कष्ट देते थे। स्वामी दयानन्द ने स्वदेशी का आन्दोलन तो चलाया ही साथ ही भारतीय युवकों को उद्योग-धन्धों की शिक्षा पाने के लिए जर्मनी के एक प्रिंसीपल वाइज के साथ पत्राचार कर उन्हें भेजने की व्यवस्था की। इस प्रकार कांग्रेस से ५० वर्ष पूर्व ही स्वामी दयानन्द ने स्वराज्य और स्वदेशी के लिए सक्रिय एवं प्रचण्ड प्रयास किया था।

वस्तुत: स्वामी दयानन्द महाराज के शुभ कार्यों एवं संघर्ष के कारण ही लाला लाजपतराय, स्वामी श्रद्धानन्द, बाल गंगाधर तिलक, विपिनचन्द्र पाल, गोपालकृष्ण गोखले, सरदार अर्जुनसिंह जैसे महान् नेता तथा रामप्रसाद बिस्मिल, मदनलाल धींगरा, वीर उधमसिंह, चन्द्रशेखर आजाद, खुदीराम बोस, करतारसिंह सराबा, राजगुरु, सुखदेव, भगतसिंह जैसे क्रान्तिकारियों का निर्माण हुआ था जिन्होंने अंग्रेजी राज की जड़ों को हिला दिया था और आज हम स्वतन्त्र भारत में सुख की साँस ले रहे हैं। इसलिए हम सबको महर्षि दयानन्द महाराज के बताए वेदमार्ग पर चलकर भारत को संसार का सम्राट बनाना चाहिए। इसलिए भारत के नवयुवकों और युवतियों से मेरा निवेदन है-

''भारत माँ के पुत्र-पुत्रियों! वेद मार्ग अपनाओ तुम।
जगत्गुरु ऋषि दयानन्द के, मिलकर के गुण गाओ तुम।।
देवों की धरती है भारत, इसकी खातिर जिया करो।।
देशभक्त ईमानदार बन, बढ़-चढ़कर के काम करो।
लेखराम, गुरुदत्त बनो तुम, सारे जग में नाम करो।।''

आर्य सदन बहीन, जनपद-पलवल, हरियाणा।
९८१३८४५७७४

परोपकारिणी सभा के आगामी शिविर व कार्यक्रम

०१.	साधना-स्वाध्याय-सेवा शिविर	-	२९ अक्टूबर से ०५ नवम्बर-२०२३
०२.	ऋषि मेला	-	१७, १८, १९ नवम्बर-२०२३
०३.	सृष्टि सम्वत् की एकरूपता संवाद	-	१६ व १७ दिसम्बर-२०२३

कृपया शिविर में भाग लेने के इच्छुक शिविरार्थी पूर्व से ही प्रतिभाग की सूचना दें।

ज्ञानसूक्त - ०३

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर
लेखिका - सुयशा आर्य

प्रिय पाठक! परोपकारी पिछले कई वर्षों से आपकी सेवा में डॉ. धर्मवीर जी के वेद प्रवचनों को प्रकाशित कर रही है। इसी श्रृंखला में ऋग्वेद के प्रथम सूक्त 'ज्ञानसूक्त' की व्याख्यान माला प्रकाशित की जा रही है। प्रवचनों को लेखबद्ध करने का कार्य डॉ. धर्मवीर की ज्येष्ठ पुत्री श्रीमती सुयशा कर रही हैं।
-सम्पादक

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत्प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः।।

इस वेदज्ञान गंगा के प्रवाह में विहार करते हुए हम ऋग्वेद के १०वें मण्डल के ७१वें सूक्त की चर्चा कर रहे हैं। इस सूक्त की विशेषता, क्योंकि किसी भी धर्म, मत, सम्प्रदाय में जो बौद्धिकता है वो उसकी सबसे बड़ी कसौटी है, वो उसकी बड़ी उपलब्धि है। इसलिए हमारा जो आचरण है, जो हमारा व्यवहार है, जिसे हम धर्म कहते हैं, उस धर्म का पूरा नाम वैदिक धर्म है। अर्थात् धर्म के सम्बन्ध में जो भी वेद ने कहा है वो करने योग्य है और हमें कभी सन्देह हो तो क्या करना चाहिए क्या नहीं करना चाहिए उसके लिए वेदा हमारा परम प्रमाण है। तो इस दृष्टि से हमें वेद का मार्गदर्शन हमारे जीवन के लिए आवश्यक और उपयोगी है। इस सूक्त में 11 मन्त्र है। इसके ऋषि को बृहस्पति कहा गया है और इसका देवता ज्ञान है। तो बृहस्पति यहाँ परमेश्वर के लिए है, क्योंकि वह ज्ञान का, वाणी का स्वामी है। बृहस्पति ज्ञान के अधिष्ठाता को कहते हैं, बृहस्पति गुरु को कहते हैं, सबसे अधिक ज्ञान रखने वाले मार्गदर्शक को कहते हैं। तो इस दृष्टि से यहाँ बृहस्पति परमेश्वर है और ज्ञानम् इन मन्त्रों का विषय है। हमने पहले मन्त्र के सम्बन्ध में चर्चा की थी, क्योंकि ज्ञान का अधिष्ठाता ईश्वर है तो उससे मुझे ज्ञान कैसे मिला यह बात हम केवल इस मन्त्र के शब्दों को देखेंगे तो ही पता लग जाता है। कहते हैं बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नाम धेयं दधाना: इसकी विशेषता देखिये कि इस ज्ञान का जो देने वाला है वो बृहस्पति है, वो परमेश्वर है, गुरु है, वो आदि गुरु है जिसको योगदर्शन ने कहा, 'स एष पूर्वेषाम् अपि गुरुः कालेन अनवच्छेदात्' यह गुरुओं का भी गुरु है, आदि गुरु है, क्योंकि कालेन अनवच्छेदात्, क्योंकि काल का, समय का हमारे और उसके बीच में कोई व्यवधान नहीं है। उसकी कोई अनुपस्थिति नहीं है। जैसे जीवात्मा अनादि है, वैसे ही परमात्मा भी अनादि है, तो इस जीवात्मा और परमात्मा का जो सम्बन्ध है वो भी नित्य है। तो इस नित्य सम्बन्ध के कारण उससे जो ज्ञान प्राप्ति का अवसर है वो सदा बना रहता है, क्योंकि वह पूर्ण है, वह शाश्वत है, वह सर्वत्र है, इसलिए सब स्थानों पर उसके ज्ञान का प्रसार है, प्रचार है, प्रकाश है। इसलिए यह कहना कि वह देता है, देगा, यह तो समझने, समझाने के शब्द हैं। वो तो, उसका ज्ञान तो प्रकाश की भाँति सब जगह फैला हुआ है। जो भी इस प्रकाश में आएगा उसे इसका लाभ मिलेगा, इससे वो परिचित होगा, वो इसका सदुपयोग करेगा। तो इसलिए, वह देता है, यह प्रयोग उसके लिए छोटा है, उसका देना कभी रुका ही नहीं है, क्योंकि रुकना और चलना उपलब्धि और अनुपलब्धि को बताता है। तो वो तो कभी भी, कहीं भी अनुपस्थित न रहा है न रहेगा। इसलिए यह कहना कि वह ज्ञान देता है, देगा यह शब्दावली बड़ी सापेक्ष है, हमारी अपेक्षा से है। हम

कभी लेते हैं तो हम कहेंगे कि दे रहा है और कभी हम नहीं लेते हैं तो कहेंगे कि नहीं दे रहा है। लेकिन उसका अपना देना कभी रुकता नहीं है। इसको एक और वेद मन्त्र से हम समझ सकते हैं। हमारी संध्या में हम आचमन का एक मन्त्र पढ़ते हैं- ओ३म् शं नो देवीरभिष्ट्य आपो भवन्तु पीतये। शं योरभि स्त्रवन्तु नः। अर्थात् वो परमेश्वर जो है वो सुख देता है, क्योंकि सुख देने की स्थिति इसलिए है कि दुःख उसके पास नहीं है। वो देता है यह भी प्रक्रिया वैसी ही है। देना, गिन कर देना, समय पर देना यह सब ऐसी कल्पनायें हैं जो उसको छोटा बताती हैं। इसलिए वेद मन्त्र में जो बात कही है कि वह सुखों की वर्षा करता है और वो सतत वर्षा करनेवाला है। जब वर्षा होती है तो उससे हमको जो अभिप्राय प्रकाशित होता है, जो बात हमारे सामने आती है कि उसके देने की कोई सीमा नहीं है। उसके सामर्थ्य में कहीं आकर रुकावट नहीं है वो सदा ही देता है, देता ही रहता है इसलिए उसके देने के बारे में कोई प्रश्नवाचक चिह्न नहीं लगता। हम देवता को देवता कहते किसलिए हैं? देने से। कोई थोड़ा देता है, वो देवता छोटा है अल्प है, कम है। इसलिए जो देव है और जितना बड़ा है उसके देने का जो तरीका है, प्रकार है वो भी अलग तरह का है। एक व्यक्ति देता है, माँगने पर देता है, सीमित मात्रा में देता है, कभी -कभी देता है और कभी किसी को देता है और किसी को नहीं देता। एक देने का तरीका तो यह है। एक देने का तरीका दूसरा है। वो देता है, लेकिन उसका देना कभी रुकता ही नहीं है, उसका प्रवाह जो है दान का वो निरन्तर चलता रहता है, वो कभी न रुका है, न रुकेगा। उसका सूर्य का प्रकाश है, पता नहीं कब से चल रहा है, कब तक चलता रहेगा। उसका जल है, उसकी वायु है, उसका अग्नि है, उसका अन्न है, उसका फल है, उसका कन्दमूल है। यह सब कुछ उसने दिया हुआ है और इसके देने की कोई सीमा भी नहीं है। कब से दे रहा है पता नहीं है और कब तक देता रहेगा, जिनको चाहिए वो भले ही समाप्त हो जायें, लेकिन उसका देना कभी समाप्त नहीं होगा। इसलिए वह कैसा देने वाला है, वह ऐसा देनेवाला है जो सदा से देता है, देता रहा है, देता रहेगा और उसकी दूसरी विशेषता क्या है- वो देता है, बिना माँगे देता है। मुझे आवश्यकता होगी, तब मैं जाऊँगा, तब माँगूगा, तब वो सोचेगा, तब वो देगा यह मनुष्य के काम हैं। उसके यहाँ तो हर समय मनुष्य कुछ न कुछ लेते ही रहते हैं। दुनिया बनती ही रहती है, चलती ही रहती है। तो उसके यहाँ रुकने का कोई प्रश्न ही पैदा नहीं होता। किसी को आज आवश्यकता है, किसी को कल है, किसी को परसों है तो वह दे रहा है और निरन्तर दे रहा है और तीसरी जो विशेषता है- हमें माँगने पर मिलता है, कोई हमें माँगने पर देता है, लेकिन वो तो देनेवाला जो है, सदा दे रहा है, सबको दे रहा है और बिना माँगे दे रहा है। उससे माँगने की आवश्यकता नहीं पड़ती। आप जब चाहें तब ले सकते हैं, जहाँ चाहें वहीं मिल सकता है, तो उसका जो देने का प्रकार है उसमें माँगने की आवश्यकता नहीं होती। आपको जब आवश्यकता हो तब ले सकते हो और उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वो किसी को देता हो, किसी को नहीं, ऐसा नहीं है। उसके लिए कोई भी ऐसा पात्र नहीं है, जिसको वो देना नहीं चाहता। यह तो वैसा है, जो कुएं पर, नदी पर जाता है तो नदी ने कभी किसी को देने से मना नहीं किया, कुएं ने नहीं किया। जिसको आवश्यकता होती है वो जाता है और जिसको जितनी आवश्यकता होती है, जितनी योग्यता होती है, उतना लेता है। तो वैसे ही परमेश्वर के सुखों की जो वर्षा है, ज्ञान की वर्षा है वो निरन्तर है, सतत है, सबके लिए है। जब जो जितनी मात्रा में चाहे, ले सकता है, न लेना चाहे तो नहीं ले सकता है। तो इसलिए देने का जो प्रकार है वो सबसे भिन्न है। वो देता है, वो निरन्तर देता है, देता ही रहता है। सबको देता है, बिना माँगे देता है और असीम देता है। उसके यहाँ कोई बन्धन नहीं है, वो

आपके सामर्थ्य पर निर्भर करता है। शं यो रभि स्रवन्तु नः। जो सुख है उसकी चारों ओर से हमारे यहाँ वर्षा होती है तो परमेश्वर सुखों की वर्षा करता है, तो सुखों की वर्षा करने से उसके देने का जो प्रकार है वो पता लगता है और वो सुख ज्ञान के बिना तो होता ही नहीं है। इसलिए जब सुख दे रहा है तो ज्ञान देना भी उसका वैसा ही काम, वैसा ही स्वभाव है। इसलिए इस मन्त्र में जो मुख्य बात कही गयी है बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः। वो बृहस्पति जो दे रहा है ज्ञान को, जो वाणी को प्रेरणा कर रहा है। अर्थात् हमारे मन में विचार आता है और वो विचार, विचार ही रहता है, यदि वाणी उसे अभिव्यक्ति न दे। तो इसलिए कहा है कि वो जो विचार है, वो ज्ञान है उसको जो वाणी का रूप दिया जा रहा है वो वाणी का रूप देनेवाला कौन है? तो इस मन्त्र में कहा गया है, बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत- तो सबसे पहले वाणी की प्रेरणा करने वाला, वाचो अग्रं यत्प्रैरत, वो बृहस्पति था, वो बृहस्पति है और इस देने के कारण से, वो हमको कैसे दे रहा है, यह जो वाणी है, यह वाणी हमको पहले ज्ञान के रूप में प्राप्त हुई और उसकी अभिव्यक्ति हो रही है। वाणी के रूप में वाचो अग्रं, जो वाणी से पहले प्रैरत, प्रेरणा के द्वारा दधानाः धारण करनेवाला है। अर्थात् हमारे अन्दर जो ज्ञान है उसको हम अभिव्यक्त तो वाणी के माध्यम से कर रहे हैं। लेकिन वाणी के अन्दर जो ज्ञान है वो उससे पहले है। तो वह पहले कहाँ से आएगा? वो वाणी से नहीं आया हुआ है, वो प्रेरणा से आया हुआ है। ऋषि दयानन्द ने एक बात बहुत अच्छी लिखी है- वो लिखते हैं, एक प्रश्न उत्पन्न होता है कि परमेश्वर ने हमको, ऋषियों को ज्ञान कैसे दिया? क्योंकि हम जानते हैं कि मुख से बोले बिना और कान से सुने बिना हमें कुछ उपलब्ध नहीं होता, या हम किसी को कुछ दे नहीं सकते। और ईश्वर निराकार है और आत्मा भी निराकार हैं तो ऐसी स्थिति में दोनों को विचारों का आदान-प्रदान करनेवाला हम कैसे मानें कैसे समझें? तो ऋषि दयानन्द कहते हैं, दो बातें समझो एक तो यह बात समझो कि ज्ञान के लिए भाषा की आवश्यकता होती है अर्थात् बिना भाषा के आपको ज्ञान नहीं मिल सकता। मान लीजिये कि आप मन में यह सोच रहे हैं कि मुझे कहीं जाना है, आप सोच रहे हैं कि मुझे कोई पुस्तक पढ़नी है। तो यह जो विचार है यह बिना भाषा के आपके अन्दर पैदा नहीं हो सकता और जब यह विचार पैदा होता है, मन के अन्दर तो इसके लिए न तो बोलने वाले की आवश्यकता होती है न सुनने वाले के साधनों की आवश्यकता होती है। जैसे हम मन में विचार करते हुए, अपने मन में ही बोल लेते हैं, मन में ही भाषा को समझ लेते हैं, मन के अन्दर से ही वो भाषा हमारे अन्दर उठती है। तो जब मन के अन्दर से हमारे अन्दर कोई चीज भाषा के रूप में उठ सकती है तो जो हमारे अन्दर पहले से विद्यमान है उसके अन्दर की जो बात है, भाषा है, विचार है वो हमारे मन में, हमारी आत्मा में आ सकता है, आता है। इसलिए ऋषि दयानन्द कहते हैं कि वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः उस परमेश्वर ने हमारे अन्दर, ऋषियों के अन्दर वो प्रेरणा की, ज्ञान की, जिस ज्ञान की प्रेरणा को हमारे ऋषियों ने अपने आगे आने वाले लोगां के लिए अभिव्यक्त किया, उससे पहले उसे परमेश्वर से प्राप्त किया। तो परमेश्वर से प्राप्त होने के लिए न बोलने की आवश्यकता है, न सुनने के साधन कान आदि इन्द्रियों की आवश्यकता है। इसलिए यहाँ पर एक विशेष शब्द जो काम में लिया गया है 'प्रेरत' अर्थात् प्रेरणा से। हमारे अन्दर ज्ञान की जो प्रेरणा हुई, उस प्रेरणा से हमें परमेश्वर ने ज्ञानवान बनाया और उस ज्ञान को हमने स्वीकार किया, ग्रहण किया इसलिए मन्त्र कहता है कि परमेश्वर इस वेदज्ञान को हमारे अन्दर प्रेरणा से धारण कराता है।

मनुष्यों को चाहिये कि सदा यज्ञ का आरम्भ और समाप्ति को करें और संसार के जीवों को अत्यन्त सुख पहुँचावें। **-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.६२**

एक पुरानी उलझन (१)

पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय

टिप्पणी : संस्कार विधि के कुछ स्थलों को लेकर विद्वानों में मतभेद रहा है। पण्डित गंगाप्रसाद उपाध्याय के लिखने के पश्चात् यह चर्चा अधिक प्रसृत हुई। आर्यजगत् के प्रमुख शास्त्रार्थ महारथी श्री ठाकुर अमरसिंह ने उपाध्यायजी के लेख के उत्तर में लेख लिखकर समाधान प्रस्तुत किया था। लगभग ६० वर्ष पूर्व का यह लेख यथातथ रूप में पुनः प्रकाशित है - सम्पादक

आर्यमित्र २० जनवरी सन् १९६० ई. के पृष्ठ १३ पर श्री गंगाप्रसाद वानप्रस्थी (रिटायर्ड चीफ जज) हलद्वानी (नैनीताल) ने "कर्मकाण्ड में अनियमितता" शीर्षक लेख में अग्निहोत्र के अन्दर समिधा वाले मन्त्रों के विषय में एक उलझन का उल्लेख किया है। वह उलझन बहुत पुरानी है, लगभग ६० वर्षों से तो मैं सुनता आ रहा हूँ, सन् १६२० ई. में जब में इलाहाबाद में पढ़ने आया था, तो श्री मेवालाल, प्रधान आर्यसमाज, के घर पर यही चर्चा हुआ करती थी कि "अयन्त इध्म..." मन्त्र से समिधा डालने की प्रथा आप परम्परा के विपरीत है। उस समय यह चर्चा केवल व्यक्तिगत थी। खुल्लमखुल्ला कहने का कोई साहस नहीं करता था, २०-२५ वर्षों के बाद जब मैंने विचार किया और संस्कार विधि के आदिम (परिव्यक्त) संस्करण तथा प्रचलित पुस्तक के ई संस्करणों का मिलान किया, तो मुझे निश्चय हो गया कि कोई न कोई भूल अवश्य है। मैंने इस विषय में "आर्य मित्र" में एक लेख माला दी, उस पर लोग बिगड़ खड़े हुए। विवेचन किसी ने न किया, कचालू साहित्य की भरमार कर दी। मुझे इतना तो स्पष्ट दिखता था कि कोई भूल है, क्योंकि किसी प्राचीन विधान में अयन्त मन्त्र... से पहली समिधा और- "समिधाग्निं सुसमिद्धाय ....." (दो मन्त्रों) से दूसरी समिधा देने का प्रावधान नहीं है। परन्तु उस समय में यह नहीं समझ सका था कि भूल किस प्रकार हुई और कहाँ पर हुई? सन् १९४६ ई. की वर्षा ऋतु में, मैं स्वयं अजमेर गया, और "श्री हरबिलास जी सांड़ी" की विशेष आज्ञा से कुञ्जियां पाकर संस्कार विधि की असली कॉपी और प्रेस कॉपी का प्रेस के एक अधिकारी के संरक्षण में अवलोकन किया।

असली कॉपी को देखते ही मेरी उलझन दूर हो गई। असली कापी पेन्सिल से लिखी है और स्वामीजी ने उसको कहीं-कहीं, काट-छांट कर शुद्ध किया है, उसके अन्दर समिधा के सम्बन्ध में "अयन्त इध्म..." मन्त्र का कहीं अवलेश भी नहीं है। तीन समिधाओं के लिए तीन मन्त्र - (१) समिधाग्नि... (२) सुसमिद्धाय... (३) तन्त्वा समिद्भि... दिए हैं, प्रेस कॉपी किसी अन्य लेखक ने बनाई है। उसका लेख तो सापेक्षतः अच्छा है, परन्तु उसकी योग्यता बहुत कम प्रतीत होती है। यह मक्खी पर मक्खी मारता है। और यदि कोई सोचने वाला स्थल आ जाता है, तो वह सोच नहीं सकता। पहले तो प्रेस कॉपी लिखने में, उसने भी समिधाओं के लिए तीन मन्त्र दिये थे, परन्तु बाद में न जाने किसकी प्रेरणा से किस परिस्थिति में, और किस समय अयन्त इध्मः... मन्त्र पीछे से जोड़ दिया, कागज पर इतने बड़े मन्त्र को बीच में प्रक्षिप्त कर देने का अवकाश तो था नहीं। अतः कुछ अंश तो पंक्ति के रिक्त भाग में लिखा गया और शेष हासिये पर! इसी प्रकार इस प्रक्षेप को सुसंगत बनाने के एक सुसमिद्धाय... मन्त्र के पश्चात् अर्थात् दोनों मन्त्रों से, दूसरे यह शब्द पीछे से जोड़ दिए गए। प्रेस कॉपी बनाने वाले लेखक की बदनियती तो प्रतीत नहीं होती, क्योंकि बदनियती के लिए कोई प्रयोजन होना चाहिए, परन्तु भूल अवश्य हुई है।

मैंने "श्री भगवान् स्वरूप जी न्यायभूषण" को प्रेस से बुलाकर तत्काल ही यह सब दिखा दिया था और जिन प्रेस अधिकारी के निरीक्षण में, मैं पुस्तक का अवलोकन कर रहा था, उन्होंने और श्री भगवान् स्वरूप ने भी स्वीकार किया कि यह पीछे से मिलाया गया है। उस दिन से मैं या मेरे परिवार में कोई भी "अयन्त इध्म..." मन्त्र से पहली समिधा नहीं चढ़ाते। मैंने तभी परोपकारिणी सभा को एक पत्र लिखा जो पीछे से सार्वदेशिक में भी छपा दिया गया था। मेरी प्रार्थना थी कि इस भूल को तत्क्षण सुधार दिया जाय। प्रथम तो परोपकारिणी सभा के अधिकारियों ने सुना नहीं, जब मैंने (परोपकारिणी सभा के प्रधान) "श्री शाहपुराधीश" को लिखा तो यह विषय तीन पण्डितों की उपसमिति के हवाले किया गया। अधिकारियों को भय था कि, जो भूल ५०-६० वर्षों से चली आ रही है, उसको सुधारने में बदनामी है। यही भावना उपसमिति पर भी काम कर गई, पाण्डित्य प्रदर्शन तो बहुत हुआ, भूल की सम्पुष्टि में बाल की खाल निकाली गई, मन्त्र की विस्तृत व्याख्या की गई, परन्तु- "असत्य को त्यागने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए" ऋषि के इस वाक्य पर ध्यान नहीं दिया गया, मैंने इस पर दो प्रार्थनाएं की थी पहली यह कि मुझे बुला लिया जाए। मिलावट को पहचानने के लिए पण्डितों की आवश्यकता नहीं। कोई भी साधारण व्यक्ति देख सकता है, यदि उप समिति बनती भी तो मिलावट पहचानने वाले विशेषज्ञों को, न कि व्याकरण, शास्त्रों के विशेषज्ञों की! मैंने यह भी प्रार्थना की थी कि असली कॉपी का - फोटो छाप दो, सब लोग अजमेर जाकर देख नहीं सकते और न असली कापी ही सदा बनी रहेगी, जहाँ और बस्तों की चीजें गायब हो गयीं, वहाँ यह भी हो जाएगी, परन्तु भूल को न स्वीकार किया गया और न सुधारा गया। एक भूल की सम्पुष्टि के लिए अनेक भूलें करनी पड़ती है। यही उलझनें चली आ रही हैं। कोई "स्वाहा" और "इदन्नमम" छोड़कर संगति मिलाने का यत्न करता है। कोई इसको भी ऋषि कृत मान कर सब परम्पराओं के विरुद्ध लकीर का फकीर होना चाहता है। अभी सार्वदेशिक के किसी पिछले अंक में मैंने पढ़ा (शायद श्री आचार्य विश्वश्रवा जी का लेख है) कि हासिये पर लिख देने से कोई चीज अप्रामाणिक नहीं हो जाती। श्री आचार्य जी की युक्तियां तो घोर यत्न करने पर भी मेरे मस्तिष्क में नहीं आया करती। जो बात की ख़ुदा की कसम लाजवाब की। पापोश में लगाई किरण आफ़ताब की। यह कौन कहता है कि, हासिये पर लिखने मात्र से कोई चीज अप्रमाणित हो जाती है? भूलें प्रायः हासिए पर ही सुधारी जाती हैं, परन्तु अप्रमाणिक होने के कारण तो और ही हैं। जिनकी आप उपेक्षा करते हैं, सबसे बड़ा हेतु तो यह है कि, "वह इबारत असली कॉपी में नहीं है।" दूसरा हेतु यह है कि- "समिधा के तीन मन्त्र यजुर्वेद के पहले अध्याय के पहले ही तीन मन्त्र है, वहीं से लिए गए हैं, उनमें "अयन्त इध्म... वाला मन्त्र नहीं है। न यह वेद मन्त्र ही है, उसका विनियोग केवल अगली घृत की पांच आहृतियों के लिए हुआ है।" तीसरा हेतु यह है कि यह तीनों ऋचाएँ समिदूति हैं। "समिदूती" वे ऋचाएं कहलाती हैं जिनमें "समित्" शब्द आया हो, जैसे 'कवती' वे ऋचाएं कहलाती हैं जिनमें 'क' शब्द आया हो। यहाँ समित शब्द लिया जाता है। शब्द का पर्यायवाची नहीं लिया जाता। 'अयन्त इध्म' मन्त्र समिती ऋचा नहीं है। समिधा चढ़ाने के लिए "समिदूती" ऋचाओं के विनियोग को "रूप समृद्धता" कहते हैं। अर्थात् जिस मन्त्र का जिस कृत्य में विनियोग हो उस मन्त्र में कोई सादृश्य होना चाहिए।" चौथा हेतु यह है कि शतपथ ब्राह्मणादि में भी ऐसा ही दिया गया है। देखो "अश्वथो स्तिस्त्रः समिधो ऋतावता आद्धाति समिधाग्निमिति प्रत्यृचम्" यहाँ इस वाक्य में -"तिस्त्रः समिधा" तथा "समिधाग्निमिति" तथा 'प्रत्यृचम्' यह शब्द देखने योग्य हैं।" पाँचवा हेतु तह है कि "ऋषिवर ने संस्कार विधि को स्वयं नहीं बनाया, अपितु पुरानी

आर्य परम्परा को जीवित रखा है, वह केवल उन स्थलों पर परिवर्तन करते हैं जहा सिद्धान्त की घोर हानि देखते हैं। केवल अपना नूतनपन जताने को परिवर्तन नहीं करते। उन्होंने आरम्भ में ही लिख दिया है कि–

वेदादि शास्त्रसिद्धान्तमाध्याय परमादरात्।
आयतह्यं पुरस्कृत्य शरीरात्य विशुद्धये।।

अर्थात् वह प्राचीन आर्य प्रथा का परम् आदर करते हैं। छठा हेतु यह है कि अयन्त इध्म इस मन्त्र को बीच में डाल देने का कोई प्रयोजन न था। न तो उसके न रहने से सिद्धान्त हानि थी, और न डाल देने से किसी विशेष कमी की पूर्ति थी। सातवाँ हेतु सुनिए वह क्या है ? जो कदापि उपेक्षा के योग्य नहीं है।

असल कॉपी की एक पंक्ति तो अब भी संस्कार विधि में ज्यों की त्यों छपी हुई है। ''नीचे लिखे एक मन्त्र से एक-एक समिधा को अग्नि में चढ़ावें।'' यहाँ एक शब्द तीन बार आया है और उच्च स्वर से कह रहा है कि- ''मेरे होते हुए दो मन्त्रों से आहुति देना अनार्ष और असह्य हठ है।'' इस पंक्ति के साथ ही जरा इस वाक्य को ध्यान से पढ़िए- ''इस मन्त्र से अर्थात् दोनों मन्त्रों से दूसरी'' इसे पढ़ कर साधारण साहित्यकार भी कह देगा कि यह वाक्य कितना 'भौंड़ा' है? ऐसा प्रतीत होता है कि, रेशमी कपड़े को फाड़कर किसी ने टाट के टुकड़े से थेगरी (पैबन्द) दे दी हो। न जाने यह थेगरियाँ (पैबन्द) हमारे धर्म ग्रन्थों को कब तक सुशोभित करती रहेंगी और भविष्य में कितने विचारकों को भूल-भुलइयों में डालती रहेंगी।

अभी गत दिसम्बर (२६ दिसम्बर सन् १६६९ ई.) को वेद सम्मेलन के प्रथम व्याख्यान में श्री आचार्य विश्वश्रवा जी ने जोर-शोर से ऋषि के निर्भ्रान्त होने का प्रश्न छोड़ दिया, जिससे जनता जान सके कि, ''संसार में यदि कोई ऋषि भक्त है तो केवल विश्वश्रवा जी ही है।'' ऋषिवर ने कभी अपने लिए या किसी प्राचीन ऋषि के लिए ''सभ्रान्त'' या ''निर्भ्रान्त'' थे, यह हम नहीं जानते। जिस विषय का उन्होंने पक्ष लिया है, उसके उतने अंश में तो वह अपने को निर्भ्रान्त ही समझते होंगे, अन्यथा उसका प्रचार न करते। सिद्धान्त रूप से जीव सभी अल्पज्ञ हैं, और अल्पज्ञ ही रहेंगे, ईश्वर ही सर्वज्ञ है, बहुज्ञ और विशेषज्ञ तो ऋषि मुनि होते हैं, और इसलिए हम उन विषयों में उनकी बात पर श्रद्धा करते हैं, परन्तु हमारे सामने ऋषि के व्यक्तित्व का प्रश्न नहीं है। ऋषि के ग्रन्थों में जो अशुद्धियाँ रह गयी हैं या निरन्तर आती जा रही हैं, उनको शोधने का प्रश्न है। एक विद्वन्मण्डल है, जिसका दावा है कि कोई अशुद्धि है ही नहीं।'' जिस किसी ने अगर किसी अशुद्धि की ओर संकेत भी किया, तो उस पर ये विद्वन्मण्डल के लोग टूट पड़ते हैं। इनका सिद्धान्त है कि जनता को न तो अवकाश है, न सभी योग्य ही हैं, जो अधिक से अधिक बार स्वामी दयानन्द के नाम की दुहाई दे और बहुत जोर से खम (छाती) ठोक कर कह दे, वही सत्य होगा। उनकी थ्यूरी यह है कि जैसे चुम्बक के सम्पर्क से लोहा भी चुम्बक बन जाता है, इसी प्रकार ऋषि भी निर्भ्रान्त थे, उनके सम्पर्क से लेखक भी निर्भ्रान्त हो गए, लेखकों के सम्पर्क से कागज भी निर्भ्रान्त हो गए, और जब यह निर्भ्रान्त कागज प्रेस में पहुंचे तो प्रेस वाले भी निर्भ्रान्त हो गए, और छपी हुई पुस्तकें भी निर्भ्रान्तता के प्रभाव में आकर निर्भ्रान्त हो गयी और इन पुस्तकों को पढ़ने वाले आचार्य महोदय भी निर्भ्रान्त हो गए। ऋषि दयानन्द जी महाराज तो अब हैं नहीं - कि हम उनसे पूछ लें कि - ''महाराज आप निर्भ्रान्त हैं या सभ्रान्त?'' या अमुक शब्द आपने लिखवाया था या लेखक की भूल से लिखा गया, हमारे समक्ष तो आचार्य जी है। जिनका दावा है कि चुम्बक व लोहे के सम्पर्क वाली परम्परा से ऋषि दयानन्द की निर्भ्रान्तता इनमें भी आ गई हैं। अत: इनकी बात मानकर किसी अशुद्धि को अशुद्धि मत समझो। चाहे दो संस्करणों में परस्पर विरोध ही क्यों न हो! मुझे यह प्रवृत्ति घोर घातक प्रतीत होती है। इससे ऋषि के सिद्धान्तों की रक्षा नहीं

होती। अपितु कूड़ा, दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है। झाड़ देने वाले बदनाम होते हैं। अत: किसी को मार्जन (शुद्धि) करने का साहस भी नहीं होता। यदि ऋषि दयानन्द की प्रवृत्ति भी ऐसी ही होती तो वह प्राचीन ग्रन्थों की किसी अशुद्धि को शुद्ध करने का यत्न न करते, क्योंकि दूध में मक्खी डालने का तो सबको जन्मसिद्ध अधिकार है, किसी का प्रमादवश और किसी का स्वार्थवश, परन्तु मक्खी निकाल कर फेंकने का अधिकार तो किसी को नहीं है। जो आज पचास वर्ष से चली आने वाली भूल को नहीं सुधार सकते, वे एक सहस्र वर्ष पश्चात् इसी भूल को कैसे सुधारेंगे, तब तो मूल कागजों की राख तक भी शेष न रह जाएगी। बदनाम होगा ऋषि दयानन्द का नाम! जैसे आज हम पाराशर, व्यास आदि ऋषियों को बदनाम करते हैं। क्या कोई विद्वान् इस विषय पर आज विचार करने को उद्यत है?

गंगाप्रसाद उपाध्याय

('आर्य मित्र' के प्राचीन अंक से 'श्री पन्नालाल शर्मा' द्वारा टाईप रूप में उदधृत) यह उपरोक्त लेख जो अमर स्वामी जी महाराज द्वारा दिया गया था, उद्धृत किया गया है।

लाजपतराय अग्रवाल

श्री पण्डित ठाकुर अमरसिंह शास्त्रार्थ केसरी

'एक पुरानी उलझन' इस शीर्षक से एक लेख "आर्य मित्र में माननीय श्री पण्डित गंगाप्रसाद उपाध्याय" का मैंने पढ़ा। पूज्य पण्डित जी ने साहित्य द्वारा आर्यसमाज की जो सेवा की है, वह अवर्णनीय है। मैं तो उनके लेखन कार्य की प्रशंसा करते नहीं थकता हूँ, मुझको उनके इस कार्य की प्रशंसा करते हुए बहुत आनन्द आता है। मान्य पण्डित जी ने जितना लिखा है, और जैसा उत्तम लिखा है, उसको देखकर बड़े-बड़े लेखकों को भी आश्चर्य होता है, उन्होंने हम पर इतना ऋण चढ़ा दिया है कि, वह सौ अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करने और सौ बार अभिनन्दन समारोह करने पर भी उतारा नहीं जा सकता है। "एक पुरानी उलझन" शीर्षक लेख लगता है श्री पण्डित जी ने कुछ आवेश में आकर लिखा है। इसीलिए अपने विचार के विरुद्ध लेख लिखने वालों के लिए अनेक वाक्य ऐसे लिख दिये हैं, जो उनके जैसे गम्भीर विचारक और लेखक की लेखनी से लिखे नहीं जाने चाहिये थे। जिनके विषय में पूज्य पण्डित जी ने वह न लिखने योग्य वाक्य लिखे हैं, वह पण्डित और लेखक कौन थे? यह मुझको पता नहीं है।

इतना ही मुझको इस विषय में पता है कि मैं उनमें नहीं था। पर अब जो आगे आदरणीय पण्डित जी के विचारों के विरुद्ध लेखनी उठायेगा उस पर तो वह वाक्य लागू होंगे ही। यह सोच कर भी कुछ लिखने का साहस करता हूं। मैंने सारे लेख को दो बार पढ़ा है और उस पर चिह्न भी लगाये हैं तथा एक बार तो मैंने अन्य दो विद्वानों को साथ मिला कर उस लेख को गम्भीरता से पढ़ा और उस पर विचार किया। सारे लेख पर विचार करके मैं अल्पमति यह समझा हूँ कि इस लेख में "अयन्त इध्म आत्मा..." इस मन्त्र से समिदाधान करने के विरुद्ध पण्डित जी का आग्रह बहुत प्रबल है। हेतु यद्यपि गिनती में सात लिखे हैं। पर वह इतने प्रबल नहीं है जितना प्रबल आग्रह है। मैं इन हेतुओं पर विचार व्यक्त करता हूं। (१) प्रथम हेतु- जिसको पण्डित जी ने सबसे बड़ा हेतु बताया है, वह यह है कि "अयन्त इध्म आत्मा..." यह मन्त्र असल कॉपी संस्कार विधि की जो अजमेर में सुरक्षित है, उसमें नहीं है। यहाँ पण्डित जी ने यह नहीं बताया कि सारी संस्कार विधि में ही यह मन्त्र समिधा के लिए नहीं है या केवल सामान्य प्रकरण में ही नहीं है। इस पर विचार करना अत्यन्त आवश्यक है। यह तो पण्डित जी ने माना ही है कि पीछे से न जाने किसकी प्रेरणा से, किस परिस्थिति में और किस समय उसने (प्रेस कॉपी करने वाले ने) "अयन्त इध्न आत्मा" यह मन्त्र पीछे से जोड़ दिया।" पण्डित जी ने इसी लेख में यह भी लिखा है कि- "जिसने प्रेस कॉपी की है उसकी योग्यता बहुत कम प्रतीत होती

है'' पण्डित जी की इन पक्तियों से यह तो सिद्ध होता है कि इस मन्त्र को जोड़ने में उसकी योग्यता और उसकी अपनी कल्पना काम नहीं कर रही थी। न जाने किसकी प्रेरणा?'' इस पर यह विचारणीय है कि यह प्रेरणा ऋषि दयानन्द जी की ही हो यह सम्भव है कि नहीं? असल कॉपी तो श्री पण्डित जी ने देखी होगी, परन्तु मैंने नहीं देखी और न मेरी शक्ति है कि मैं देख सकूं, परन्तु जो संस्कार विधि हमारे सबके प्रयोग में आती है उसमें सामान्य प्रकरणस्थ क्रियाओं के करने की आगे चलकर संस्कारों में स्थान-स्थान पर जो आशाएं है उनके तीन प्रकार वर्तमान हैं, नं. १ तो यह है कि ''अमुक पृष्ठ से अमुक पृष्ठ तक को क्रिया करके वा 'करनी' नं. २ यह है कि सामान्य विधयुक्त अग्न्याधान, समिदाधान करके'' इन दो प्रकारों से तो पता लगता नहीं कि श्री पण्डित गंगाप्रसाद और श्री स्वामी रामेश्वरानन्द का पक्ष ठीक है अथवा अन्य सारे आर्य पण्डितों का नं. ३ यह है कि जो बिल्कुल स्पष्ट है- (अ) अयन्त इध्म आत्मा- (पुंसवन संस्कार) (ब) ओ३म्, अयन्त इध्म आदि मन्त्रों से वेदी में चन्दन की समिदाधान करे (जातकर्म संस्कार) (स) अयन्त इष्म आदि चार मन्त्रों से समिदाधान (वेदारम्भ संस्कार), (द) अयन्त इध्म इत्यादि मन्त्रों से समिदाधान (विवाह संस्कार) (य) ओइम् अयन्त इष्म इत्यादि चार मन्त्रों से समिदाधान करके (विवाह संस्कार में दूसरी बार) (र) अयन्त इध्म... इत्यादि मन्त्रों से समिदाधान करके (वानप्रस्थ प्रकरण में) इस प्रकार सामान्य प्रकरण से अतिरिक्त छः बार यह इस अयन्त इध्म मन्त्र का उल्लेख किसकी प्रेरणा से किसने किया? और असल कॉपी जो श्री उपाध्याय ने देखी है, उसमें यह है कि नहीं? और यदि है तो इसके स्थान में उन स्थलों पर क्या है? यह भी विचारणीय है। इस पर श्री उपाध्याय ने कुछ भी प्रकाश नहीं डालता है। समिधाग्निंदुवस्यत इत्यादि तीन मन्त्रों से समिदाधान ऐसा आदेश और संकेत सारी संस्कार विधि में एक बार भूल कर भी क्यों नहीं आया? इसका उत्तर भी श्री उपाध्याय जी को अवश्य ही सोचना चाहिये। ''समिद्धाग्नि...'' इत्यादि तीन मन्त्रों से समिदाधान किया जाय ऐसा भी तो संस्कारों में आदेश होगा ही। वह कबसे निकाला गया है? यह खोज आपने की ही होगी। वह भी सबके सम्मुख आ ही जानी चाहिये। यह तो पहला और सबसे बड़ा हेतु था, जिस पर मैंने कुछ विचार किया है।

इस पर मेरे यह छः प्रश्न हैं, (१) संस्कार विधि की प्रेस कापी में सामान्य प्रकरण के हासिये पर अयन्त इध्म... मन्त्र ऋषि दयानन्द जी की प्रेरणा से लिखा गया हो, यह सम्भव है, कि नहीं? यदि नहीं तो क्यों ? (२) सामान्य प्रकरण के अतिरिक्त अन्य छः स्थलों पर इसी ''अयन्त इध्म...मन्त्र से समिदाधान का आदेश क्यों और कैसे हो गया? (३) यह भी उस प्रेस कॉपी में आदेश और संकेत है या नहीं? (४) समिधाग्नि... इत्यादि तीन मन्त्रों से समिदाधान करे ऐसा आदेश संस्कार विधि सारी की सारी में एक बार भी क्यों नहीं है? (५) संस्कार विधि में जहाँ-जहाँ स्पष्ट रूप में अयन्त इध्म इत्यादि चार मन्त्रों से यह आदेश है वहाँ-वहाँ प्रेस कॉपी में इसके स्थान पर क्या संकेत हैं? (६) समिधाग्नि इत्यादि तीन मन्त्रों से समिदाधान करे ऐसा संकेत संस्कारों में यदि था, तो वह कब हटाया गया है? आशा है, सब आयं विद्वान् मेरे इन प्रश्नों पर विचार करेंगे!

पूज्य उपाध्याय जी का दूसरा हेतु यह है कि- ''समिधा के तीन मन्त्र यजुर्वेद के पहले अध्याय के पहले तीन मन्त्र हैं, वहीं से लिये गये हैं, उनमें ''अयन्त इध्म...'' मन्त्र नहीं है। न यह वेद मन्त्र ही है, इसका विनियोग केबल अगली घृत की पाँच आहुतियों ही के लिए हुआ है। ''पहले अध्याय के पहले तीन मन्त्र'' यह श्री उपाध्याय द्वारा भूल से लिखा गया है। वास्तव में ये मन्त्र ''तीसरे अध्याय के पहले तीन मन्त्र हैं। इस वाक्य समूह में मुझ जैसे अल्पज्ञ को तो कहीं हेतु बना दिखाई नहीं देता है। मुझको इसमें तीन भाग दिखाई देते हैं, (१)

यजुर्वेद के तीन मन्त्र जहाँ से लिये हैं, यह मन्त्र वहाँ नहीं है। (२) यह वेद मन्त्र नहीं है। (३) घृताहुति में ही इसका विनियोग है। अगर पहले भाग को हेतु मान लिया जाये, तो सारी संस्कार विधि और सन्ध्या आदि सभी कार्य अनुचित और वर्जनीय हो जायें, संस्कार विधि में यदि ऐसे स्थलों को यहाँ उद्धृत किया जावे, जिनमें एक ही स्थल के मन्त्र नहीं बल्कि भिन्न-भिन्न ग्रन्थों और स्थलों के मन्त्रों का प्रयोग किया जाता है, तो एक छोटी सी पुस्तक बन जाये। सर्व कार्यों में सर्वथा एक ही स्थान से लिए हुए हों, ऐसा कोई नियम नहीं है। इसलिए यह असद् हेतु है। दूसरा भाग यह है कि 'यह वेद मंत्र नहीं है' ठीक है यह वेद मन्त्र नहीं है। पर यह भी इस मंत्र के बहिष्कार का हेतु नहीं बन सकता है। संस्कारों में ऐसे बहुत से मन्त्र है, जो वेद के नहीं हैं। उनके बहिष्कार से दूसरी ही संस्कार विधि नई बनानी पड़ेगी। सारे विश्व में जहाँ कहीं भी कोई वैदिक धर्मी रहता है, वहाँ "यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं इस मन्त्र से ही यज्ञोपवीत पहना जाता है, पर क्या यह वेदमन्त्र है? ऐसे संस्कार विधि में बहुत से मन्त्र हैं जो वेद के नहीं हैं, तीसरा भाग दूसरे हेतु का यह है कि इसका केवल पांच घृताहुतियों के लिए विनियोग हुआ है, इस पर बहुत आश्चर्य है कि, जो मन्त्र वेद का न होने के कारण समिदाधान में वर्जित किया जा सकता है, वह घृताहुति में वेद मन्त्र न होने पर भी कैसे विनियुक्त हो सकता है? घृताहुतियाँ देते समय क्या यह वेद मन्त्र हो जायेगा?

क्रमशः

रश्मि सिद्धान्त सिद्धि-एक असफल प्रयास

डॉ. मनु आर्या

वैदिक रश्मि से सम्बन्धित लेख व उत्तर-प्रत्युत्तर का यह क्रम परोपकारी पत्रिका में आगे प्रकाशित नहीं किया जायेगा। कृपया इससे सम्बन्धित लेख कोई न भेजें। - सम्पादक

परोपकारी पत्रिका के अगस्त द्वितीय २०२३ के अंक में प्रकाशित आचार्य रवीन्द्र जी के लेख 'वेद मन्त्रों से संसार की उत्पत्ति की विवेचना' की प्रतिक्रिया में अग्निव्रत जी का एक वीडियो यूट्यूब में सामने आया था। उस वीडियो में उन्होंने आचार्य रवीन्द्र जी पर अनेक प्रकार के मिथ्या आरोप लगाये थे। उन सब की चर्चा तो मैं नहीं करूंगी। पर इतना अवश्य स्पष्टीकरण देना चाहूंगी कि आचार्य रवीन्द्र जी के साथ संवाद की उन्होंने जो भी बातें कही हैं वे सब असत्य हैं। सुनने वालों को सम्भवतः ऐसा प्रतीत होता होगा कि इसमें कुछ सच होगा। किंतु ऐसा नहीं है। अनेक वर्ष पूर्व जब फेसबुक बनाया नहीं गया था उस समय उनका ऐतरेय ब्राह्मण का नमूना भाष्य प्रकाशित हुआ था। उसको दृष्टि में रखकर आचार्य रवीन्द्र जी ने एक बार अवश्य फेसबुक में किसी और के पोस्ट पर कुछ अपनी प्रतिक्रिया दी थी। नैष्ठिक जी से आचार्य रवीन्द्र जी की प्रत्यक्ष कोई बात नहीं हुई थी। ना ही किसी ने आचार्य जी से कहा था कि 'ऐतरेय ब्राह्मण की एक कंडिका का भाष्य करके दिखाओ।' उपनिषद् आदि के सम्बन्ध में जो भी संवाद की बात उन्होंने कही है यह सब मिथ्या है। ऐसा कोई संवाद नहीं हुआ था। (मैं आचार्य रवीन्द्र जी से इस विषय में चर्चा करके स्पष्टीकरण करने के बाद ही यह बात कह रही हूं)। हां नैष्ठिक जी ने व्याकरण महाभाष्य के कुछ वाक्यों के विषय में कहा था कि इन वाक्यों का अर्थ आचार्य रवीन्द्र जी आदि वैयाकरण नहीं कर पाते हैं। वे वाक्य हैं-

पंच पंचनखा भक्ष्याः। अभक्ष्यो ग्राम्यकुक्कुटः। अभक्ष्यो ग्राम्यसूकरः। आरण्यो भक्ष्यः।

इन वाक्यों की अग्निव्रत जी ने अपने वेद विज्ञान आलोक पुस्तक के नवम अध्याय के अन्त में बड़ी विचित्र